आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 2/जून 2026

Received: 23/05/2026; Accepted: 02/6/2026; Published: 28/06/2026

अमृत लाल नागर के उपन्यासों में भारतीय समाज

डॉ. रेशमा एम एल
सहायक आचार्य
क्राइस्ट डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी
बैंगलोर

डॉ. रेशमा एम एल, अमृत लाल नागर के उपन्यासों में भारतीय समाज, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 2/जून 2026**,(234 -241)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

https://doi.org/10.5281/zenodo.21442187

भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता इसकी निरंतरता और अनुकूलन क्षमता है। जहाँ पश्चिमी दृष्टिकोण मानव विकास को आदिम से आधुनिक की ओर देखता है, वहीं भारतीय मनीषियों का मानना है कि मानव जन्म से ही एक बौद्धिक और सामाजिक प्राणी है। यह समाज हमेशा से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उदार वैश्विक विचार से संचालित रहा है। इतिहास गवाह है कि दुनिया की बड़ी-बड़ी और शक्तिशाली सभ्यताएँ (जैसे मिस्र, यूनान और रोम) समय के थपेड़ों के साथ इतिहास के पन्नों में दफन हो गईं, लेकिन भारतीय संस्कृति आज भी जीवित है। भारत कई विदेशी संस्कृतियों के आक्रमण हुए, लेकिन भारतीय समाज की समन्वयवादी प्रकृति ऐसी थी कि उसने इन बाहरी संस्कृतियों को खुद में इस तरह विलीन कर लिया कि आज उन्हें अलग से पहचानना भी असंभव है। यह समाज 'जीओ और जीने दो' तथा सबके कल्याण की भावना पर आधारित है।

ऐतिहासिक रूप से, भारतीय समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक बेहद वैज्ञानिक और व्यावहारिक ढांचा तैयार किया गया था, जो बाद में विकृत हो गया। प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था पूरी तरह 'कर्म' और योग्यता पर आधारित थी, न कि जन्म पर। कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि और कार्य बदलकर अपना वर्ण बदल सकता

था। लेकिन मध्यकाल तक आते-आते यह व्यवस्था रूढ़िवादी हो गई और जन्म आधारित 'जाति प्रथा' में बदल गई, जिससे समाज में ऊंच-नीच, असमानता और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराइयाँ पैदा हो गईं। इसी तरह, मानव जीवन को अनुशासित और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए १६ संस्कारों और चार आश्रमों की व्यवस्था की गई थी ताकि व्यक्ति भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में संतुलन बना सके। महिलाओं की स्थिति भी शुरुआती दौर में अत्यंत गौरवमयी थी, जहाँ उन्हें पूजनीय माना जाता था, लेकिन सामाजिक गिरावट के दौर में उनके अधिकारों और सम्मान में भी कमी आई।

१९वीं और २०वीं शताब्दी का दौर भारतीय समाज के लिए आत्म-मंथन' का काल था। अंग्रेजी हुकूमत की गुलामी और आंतरिक कुरीतियों से तंग आकर भारतीय समाज ने खुद को बदलने का फैसला किया। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' के माध्यम से सती प्रथा जैसी अमानवीय परंपरा को खत्म कराया और विधवा विवाह का समर्थन किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' के जरिए वेदों के सच्चे ज्ञान की ओर लौटने का आह्वान किया और छुआछूत का विरोध किया। इसके बाद स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे दूरदर्शी नेताओं ने समाज के वंचित, शोषित और दलित वर्ग के अधिकारों के लिए निर्णायक आंदोलन चलाए। इन सुधारों के परिणामस्वरूप पारंपरिक जातीय पंचायतों की पकड़ कमजोर हुई और आधुनिक शिक्षा ने युवाओं की सोच को बदला। आज का भारतीय समाज इसी द्वंद्व और संतुलन से गुजर रहा है-जहाँ एक तरफ प्राचीन सनातनी मूल्यों और नैतिकताओं को बचाने की चिंता है, तो दूसरी तरफ एक आधुनिक, प्रगतिशील और समतावादी भारत के निर्माण का जोश है।

वर्तमान दौर में सामाजिक विसंगतियों में कुछ सकारात्मक बदलाव तो आए हैं, किंतु स्वार्थ से प्रेरित राजनीति ने कई नई जटिलताओं को जन्म दे दिया है। लेखक अमृतलाल नागर के साहित्य में इन सामाजिक परिस्थितियों का बहुत व्यापक और गहरा चित्रण देखने को मिलता है। भारतीय जनजीवन आज भी विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों, रूढ़ियों और दकियानूसी परंपराओं के जाल में फंसा हुआ है। इन कुरीतियों की जड़ें हमारे समाज में इतनी गहरी हैं कि इन्हें जड़ से उखाड़ना बेहद चुनौतीपूर्ण है। नागर जी ने अपनी रचनाओं में इन प्रवृत्तियों को बखूबी उकेरा है।

उपन्यास 'बूंद और समुद्र' के माध्यम से लेखक दिखाते हैं कि कैसे अंधविश्वास के वशीभूत होकर इंसान अपनी सोचने-समझने की शक्ति खो देता है। कहानी में 'ताई' नाम की पात्रा अपने सौत के पोते को नुकसान पहुँचाने के लिए आटे का पुतला बनाकर टोना-टोटका करती है। समाज की विडंबना देखिए कि बड़े-बड़े रसूखदारों, मंत्रियों और अफसरों के बीच सम्मान पाने वाले उनके पति रायबहादुर भी इस अंधविश्वास के आगे घुटने टेक देते हैं और गिड़गिड़ाने पर मजबूर हो जाते हैं। समाज में फैले इसी डर का इस्तेमाल कभी-कभी लोग आत्मरक्षा के लिए भी करते हैं। जब एक आक्रोशित भीड़ चित्रकार 'सज्जन' के घर पर हमला कर उसका सामान फेंकने लगती है, तब ताई केवल मुट्ठी भर सिन्दूर फेंककर और मारण मंत्र बुदबुदाकर उस हिंसक भीड़ को डराकर भगा देती है।

अंधविश्वास केवल किसी एक धर्म तक सीमित नहीं है। 'अमृत और विष' में मुस्लिम समाज के भीतर व्याप्त रूढ़ियों को रेखांकित करते हुए लेखक बताते हैं कि जिसे हिंदू 'ब्रह्मराक्षस' कहते हैं, उसे ही मुस्लिम समाज में 'शैतान' का रूप मान लिया जाता है। इसी तरह 'पीपल परी की दास्तान' में 'शरबती' नामक महिला, जिसे समाज मृत मान चुका था, लोगों के इसी मानसिक खोखलेपन का फायदा उठाकर रात में पीपल परी का स्वांग रचती है और लोगों को डराकर लूटती है। अमृतलाल नागर जी केवल समस्याओं को नहीं गिनाते, बल्कि अपनी कृति 'करवट' के माध्यम से इसका हल भी सुझाते हैं। जहाँ ठगों द्वारा एक सीधे-साधे युवक को 'शाहे जिन्नात' के नाम पर ठगा जा रहा था, वहाँ डॉ. देशदीपक जैसे शिक्षित युवा अपनी तार्किकता और बहादुरी से उसे बचाते हैं। लेखक का स्पष्ट मानना है कि समाज को इस अभिशाप से केवल व्यापक शिक्षा, वैचारिक जागरूकता और निर्भीकता के बल पर ही मुक्त किया जा सकता है।

नागर जी ने समाज के उच्च और संभ्रांत वर्ग के ढोंग पर भी तीखा प्रहार किया है। उत्सवों और शादियों के नाम पर लाखों रुपयों का दिखावा करना, पानी की तरह पैसा बहाना और महफिलों में तवायफों का नाच करवाना उच्च वर्ग की शान बन चुका था, जिसे प्रबुद्ध वर्ग भी मूक दर्शक या चाटुकार बनकर बढ़ावा देता था। इससे भी अधिक दर्दनाक रूप नवाबों और राजाओं के काल की उस अमानवीय प्रथा में दिखता है, जहाँ राजपूत परिवारों में बेटियों के पैदा होते ही उन्हें जहर देकर मार दिया जाता था। अपनी रचना में इसका अत्यंत कारुणिक विवरण देते हुए वे लिखते हैं कि कैसे एक १५ वर्ष की तड़पती माँ के सामने उसकी नवजात बच्ची के मुँह में दाई द्वारा मदार के पत्ते का जहरीला दूध टपकाकर उसे मार दिया गया। वर्तमान युग में भी कन्या भ्रूण/शिशु हत्या के जो रूप दिखाई देते हैं, नागर जी ने समाज को उसके प्रति सचेत करते हुए इस घृणित कार्य को पूरी तरह रोकने की पुरजोर वकालत की है।

सामाजिक विकास के समानांतर नैतिक मूल्यों का पतन भी हुआ है, जिससे यौन अपराधों और व्यभिचार में बढ़ोतरी हुई है। लेखक के अनुसार यह कोई आधुनिक समस्या नहीं है, बल्कि प्रागैतिहासिक काल से ही समाज के भीतर मौजूद रही है। उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' में काम-वृंदावन की महिलाओं के माध्यम से यह दिखाया गया है कि कैसे धार्मिक या सामाजिक आवरण के पीछे यौन शोषण की व्यवस्थाएं काम करती थीं, जहाँ कड़े और क्रूर नियम केवल पुरुषों को दंडित करने के लिए बने थे। एकदा नैमिषारण्ये में नागर जी ने काम वृंदावन की नारियों के यौन भोग का वर्णन करते हुए लिखा है। 'अंधेरे में यह नारी वृन्द पुजारिन के आदेशानुसार उस बन्दी पुरुष का उपभोग तो करता था, पर, उसे नग्न देख लेना उसके लिए घोर पाप था और उस पाप का दण्ड था मरण- स्त्री का नहीं, पुरुष का।"[1] 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की मुख्य पात्रा 'निर्गुनियां' की त्रासदी इसका बड़ा उदाहरण है। एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में जन्मी निर्गुनियां के संस्कार बचपन में ही उसकी नानी/अम्मा के अनैतिक आचरण और काम-लिप्सा के कारण दूषित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, वह अपने बुजुर्ग पति को त्यागकर एक मेहतर (मोहना) के साथ भाग जाती है और बाद में खुद भी उसी दलदल में फंस जाती है। मोहना के डाकू बनने और मारे जाने के बाद निर्गुनियां के भीतर एक

गहरा मानसिक संघर्ष (वासना बनाम सात्विकता) चलता है। अंततः उसकी सात्विक चेतना की जीत होती है और वह अपने अतीत के कुकर्मों का पश्चाताप करते हुए एक सामान्य स्त्री से कहीं ऊपर उठकर गरिमापूर्ण जीवन की ओर अग्रसर होती है। नागर जी इसके माध्यम से यौन भटकाव की समस्या का एक सुधारात्मक हल पेश करते हैं।

लेखक ने अपनी रचनाओं में उस दौर के वर्जित विषयों जैसे 'समलैंगिकता' और 'जबरन यौन शोषण' पर भी खुलकर बात की है: 'अमृत और विष' का पात्र 'हर्रो' बचपन में अपने शिक्षकों और आस-पड़ोस के वयस्कों द्वारा किए गए जबरन यौन शोषण के कारण समाज से विद्रोही हो जाता है। लेखक ने यह भी उजागर किया है कि समलैंगिक प्रवृत्तियाँ केवल भारतीय समाज तक सीमित नहीं थीं, बल्कि ब्रिटिश हुकूमत के अधिकारी (जैसे मेजर जेफरसन और कैप्टन जैक्सन) भी इसके शिकार थे, जहाँ ताकत और पैसे के बल पर कम उम्र के युवकों को अपनी हवस का माध्यम बनाया जाता था।

अमृतलाल नागर जी ने स्पष्ट किया है कि अनियंत्रित कामुकता और यौनाचार समाज के लिए एक घातक नासूर के समान हैं, जो हँसते-खेलते परिवारों को उजाड़ देते हैं और मानवीय नैतिकता का पूरी तरह विनाश कर देते हैं। उन्होंने पात्रों की तीव्र शारीरिक इच्छाओं (जैसे बूढ़ी अम्मा या निर्गुनियां की शारीरिक मांग) का यथार्थवादी चित्रण करके समाज को इसके भयानक और वीभत्स परिणामों के प्रति पूरी गंभीरता से सचेत किया है।

भारतीय समाज का जो ढांचा कभी 'वर्ण-व्यवस्था' के नाम पर बना था, वह समय के साथ पूरी तरह विकृत और दूषित हो चुका है। इसी का नतीजा है कि आज समाज में ऊंच-नीच और भेदभाव की खाई चौड़ी होती जा रही है। एक वर्ग खुद को श्रेष्ठ मानकर दूसरे वर्ग को हीन दृष्टि से देखता है। तथाकथित उच्च जातियों ने समाज के एक बड़े हिस्से को बुनियादी मानवीय अधिकारों से दूर करके 'अस्पृश्य' बना दिया। इस सामाजिक त्रासदी को अमृतलाल नागर जी ने अपनी प्रसिद्ध औपन्यासिक कृति 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में बेहद संजीदगी और यथार्थ के साथ उकेरा है।इस उपन्यास में समाज द्वारा सबसे प्रताड़ित समझे जाने वाले 'भंगी' या 'मेहत्तर' समुदाय के इतिहास पर नागर जी ने एक नया और तर्कसंगत दृष्टिकोण सामने रखा है। उनका कहना है कि: "यह कोई वंशानुगत या जन्मजात जाति नहीं है। वास्तव में इतिहास के युद्धों में जिन क्षत्रियों या उच्च वर्ण के योद्धाओं को पराजित किया गया, विजेताओं ने उनकी गरिमा को नष्ट करने के लिए उन्हें बलपूर्वक मल-मूत्र साफ करने जैसे अत्यंत निम्न कार्यों में धकेल दिया। यही वर्ग आगे चलकर भंगी कहलाया।[2] "

नागर जी स्पष्ट करते हैं कि इस वर्ग को अछूत केवल उनके द्वारा किए जाने वाले इस विवशतापूर्ण कार्य के कारण बनाया गया। इसके साथ ही, वे समाज की एक और कड़वी सच्चाई को उजागर करते हैं कि यह जातिगत विद्वेष केवल सवर्णों और दलितों के बीच ही नहीं है, बल्कि खुद दबे-कुचले वर्गों के भीतर भी एक-दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ मची है। इस सामाजिक अभिशाप को मिटाने का सुझाव देते हुए नागर जी ने आह्वान किया था: जातिगत दीवारों को ढहा दो और राष्ट्र को सूत्रबद्ध करो। भारतीय जीवन दर्शन में

विवाह को महज एक समझौता नहीं, बल्कि दो आत्माओं का पवित्र और आध्यात्मिक मिलन माना गया है। लेकिन आधुनिक दौर में विवाह के मायने पूरी तरह बदल गए हैं। नागर जी का मानना है कि किसी भी वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए पति-पत्नी के बीच शारीरिक और मानसिक सामंजस्य का होना अनिवार्य है। जब ऐसा नहीं होता, तो 'अनमेल विवाह' का जन्म होता है, जो सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर देता है।उनके उपन्यासों में इसके भयावह परिणाम देखने को मिलते हैं।

'अमृत और विष' की नायिका 'निर्गुन' का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक 75 वर्ष के वृद्ध से कर दिया जाता है। इस बेमेल रिश्ते के कारण वह गंभीर मानसिक अवसाद का शिकार हो जाती है और अंततः अपनी शारीरिक व मानसिक तृप्ति के लिए सामाजिक बंधनों को तोड़कर पलायन करने पर मजबूर हो जाती है।इसी प्रकार मिसेज माथुर का चरित्र भी यह दिखाता है कि कैसे वैवाहिक असंतोष एक स्त्री को समाज की नजरों में अवैध संबंधों की ओर धकेल देता है। नागर जी ने समाज को आगाह किया है कि जबरन थोपे गए ऐसे बेमेल विवाह केवल पारिवारिक बिखराव और सामाजिक अपराधों को जन्म देते हैं।

किसी भी प्रगतिशील समाज के लिए बाल विवाह और कम उम्र में लड़कियों का विधवा हो जाना एक बहुत बड़ा कलंक है। बचपन में शादी कर देने से युवाओं का बौद्धिक और नैतिक विकास रुक जाता है। कम उम्र की शादियों के कारण जनसंख्या में अनियंत्रित वृद्धि होती है और शारीरिक रूप से कमजोर संतानों का जन्म होता है। सबसे बड़ी त्रासदी तब होती है जब कोई मासूम बच्ची खेलकूद की उम्र में विधवा हो जाती है और उसे पूरी जिंदगी समाज के तानों और अकेलेपन में गुजारनी पड़ती है। नागर जी ने इस दर्द को 'अमृत और विष' उपन्यास की पात्र 'रानी' के माध्यम से दिखाया है, जो मात्र 13 वर्ष की आयु में विधवा हो जाती है। यद्यपि समाज के कुछ प्रगतिशील और शिक्षित युवक (जैसे रमेश) जातिगत बेड़ियों को तोड़कर ऐसी युवतियों से विवाह करके उनका पुनर्वास करना चाहते हैं, लेकिन रूढ़िवादी समाज और परंपरावादी माता-पिता इस मानवीय कार्य का भी कड़ा विरोध करते हैं। लेखक का मानना है कि इस कुप्रथा को केवल और केवल विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देकर ही समाप्त किया जा सकता है, जिसके लिए युवा पीढ़ी को आगे आना होगा।

परंपरागत भारतीय समाज में विवाह तय करते समय हमेशा अपनी ही जाति और पारिवारिक प्रतिष्ठा को प्राथमिकता दी जाती है। ऐसे माहौल में जब कोई जोड़ा इस सीमा को लांघकर 'अंतर्जातीय प्रेम विवाह' करता है, तो समाज उन्हें स्वीकार नहीं कर पाता। नागर जी के अनुसार, आज के दौर में ऐसे विवाहों को लेकर समाज में एक अजीब सा अंतर्विरोध है।'बूंद और समुद्र' के पात्र 'सज्जन' और 'वनकन्या' का अंतर्जातीय विवाह शुरुआत में सामाजिक उपेक्षा झेलता है, लेकिन बाद में उनके सेवाभाव और सामाजिक कार्यों के कारण समाज उन्हें आदर देने पर विवश हो जाता है। ऐसे विवाह समाज से दहेज जैसी कुरीतियों को मिटाने में भी मददगार साबित होते हैं। नागर जी 'अमृत और विष' के भवानी और उषा के माध्यम से सचेत भी करते हैं कि यदि वैचारिक परिपक्वता न हो, तो सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक तंगी के कारण ऐसे प्रेम विवाहों में बहुत जल्द कड़वाहट आ जाती है।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की स्थिति हमेशा से दोयम दर्जे की रही है। यदि कोई पुरुष अपने स्वार्थ या लालच के कारण पत्नी का परित्याग कर देता है, तो समाज उस असहाय महिला को 'परित्यक्ता' कहकर उसका जीना दूभर कर देता है। 'बूंद और समुद्र' की पात्र 'ताई' इसी रूढ़िवादी सोच का शिकार है, जिसे समाज ने 'डायन' का तमगा देकर हाशिए पर धकेल दिया, जबकि वह अंदर से ममता और करुणा से भरी हुई थी। वहीं दूसरी ओर, सती प्रथा जैसी अमानवीय और बर्बर रस्म को समाज ने धर्म का चोगा पहनाकर हमेशा सही ठहराने की कोशिश की। नागर जी ने अपने उपन्यासों में इस क्रूरता का पर्दाफाश करते हुए लिखा है कि: ऊंचे खानदान के लोग अपनी झूठी शान दिखाने के लिए विधवा महिलाओं को नशे की हालत में जिंदा चिता पर झोंक देते थे। उस समय ढोल-नगाड़े इसलिए जोर-जोर से बजाए जाते थे ताकि उस अभागन स्त्री की चीखें किसी को सुनाई न दें। असल में यह कोई धार्मिक त्याग नहीं, बल्कि एक सुनियोजित हत्या होती थी, जिसे अक्सर ससुराल वाले उस महिला की संपत्ति पर कब्जा करने के लिए अंजाम देते थे।

यद्यपि हमारे आदर्श वाक्यों में नारी को देवी, लक्ष्मी और सरस्वती का रूप मानकर पूजने की बात कही गई है, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर उसकी स्थिति एक 'भोग्या' जैसी बना दी गई है। घरेलू हिंसा और सामाजिक प्रताड़ना के कारण महिलाओं का जीवन नर्क बन जाता है। नागर जी के शब्दों में कहें तो, चंद अपवादों को छोड़कर समाज का एक बड़ा हिस्सा महिलाओं के लिए किसी 'कसाईखाने' से कम नहीं है, जहां वे पुरुष पर आर्थिक रूप से निर्भर होने के कारण हर जुल्म सहने को मजबूर हैं।

नागर जी ने अपनी कृतियों और साक्षात्कारों जैसे 'ये कोठेवालियाँ' में इस अंधकारमय दुनिया का बेहद मार्मिक और वास्तविक चित्रण किया है। उनका मानना है कि: कोई भी महिला अपनी मर्जी या शौक से इस गंदे धंधे में नहीं आती। इसके पीछे हमेशा सामाजिक लाचारी, छल-कपट, भुखमरी या मजबूरी होती है। समाज इन वेश्याओं को तो अछूत और पापी मानता है, लेकिन उन पुरुषों को कभी सजा नहीं देता जो इस बाजार को बढ़ावा देते हैं। 'मानस का हंस' की 'मोहिनी बाई' का चरित्र यह दर्शाता है कि इस दलदल में फंसी स्त्री भी भीतर से एक मर्यादित और ससम्मान पारिवारिक जीवन जीने के लिए तरसती है। नागर जी का स्पष्ट संदेश है कि स्त्री और पुरुष समाज के रथ के दो पहिए हैं जो एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। समाज का कल्याण तभी संभव है जब दोनों को बराबरी का सम्मान और अधिकार मिले।

अमृतलाल नागर के साहित्य में भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंड और मठों के नैतिक पतन का यथार्थ चित्रण मिलता है। लेखक दिखाते हैं कि मठाधीशों और पंडों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म को एक व्यापार बना दिया है, जिसके बारे में 'बूंद और समुद्र' में तीखा कटाक्ष है कि "यह मन्दिर, सारा धर्म-व्यापार केवल एक धन्धा है।"[3] नागर जी ने समाज के उस दिखावे पर भी चोट की है जहाँ लोग कुकर्म करके अखंड रामायण का पाठ कराते हैं-"गले काटेंगे फिर अखण्ड रामायण भी करेंगे।[4] " इसके उदाहरण स्वरूप 'नंदों' जैसी पात्रा को सामने रखा गया है, जो चरित्र सुधारने के बजाय साढ़े तीन घंटे ठाकुर जी की पूजा करती है

और खुद को सनातनी साबित करने के लिए कहती है कि वह "रोज एक-से आठ राम नाम की गोलियां बनाय के कछुवन को खिलाउत हैं।[5]"

दूसरी ओर, 'मानस का हंस' उपन्यास के माध्यम से नागर जी ने मठों के भीतर की वासना और आंतरिक राजनीति का पर्दाफाश किया है। वहाँ रहने वाले साधुओं की वास्तविकता को उजागर करते हुए एक साधु तुलसी से कहता है कि "हियां तौ सब साधू महात्मा तर माल चाहते हैं और भगतिनन से रशजोग साधते हैं।"[6] इन मठों में पवित्रता की जगह छबीली जैसी रखैलों का हुक्म चलता है और सदाचार का उपहास उड़ाते हुए कहा जाता है कि "अशली ब्रह्मचारी का कलयुग के मठों में काम नहीं है।"[7] नागर जी ने स्पष्ट किया है कि वर्तमान समाज में दुष्ट और चालाक लोग फल-फूल रहे हैं, जबकि साधु-संतों के भेष में छिपे व्यभिचारियों को समाज में उतना ही अधिक पूजा जाता है, जिससे सच्चे और सज्जन लोगों का धर्म से भरोसा उठने लगा है।

नागर जी केवल एक कथाकार या साहित्यकार ही नहीं थे, बल्कि वे एक सजग समाजशास्त्री भी थे। उन्होंने भारतीय समाज-व्यवस्था का बहुत निकटता से और सूक्ष्म निरीक्षण किया था। वे अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से या सीधे अपने कथनों द्वारा समाज के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते थे। नागर जी का मानना था कि समाज की प्रगति वास्तविक अर्थों में तभी मानी जा सकती है, जब उसका लाभ जनसाधारण तक पहुँचे। किसी विशिष्ट या अमीर वर्ग की उन्नति को वे समाज की प्रगति नहीं मानते थे। उनके उपन्यास 'मानस का हंस' का एक उद्धरण इस बात को स्पष्ट करता है: "टूटी झोपड़ियों के बीच में अकेले महल की कोई शोभा नहीं होती है।[8] "जब समाज में निराशा और भय का वातावरण व्याप्त हो जाता है, तो लोगों की समाज के प्रति आस्था समाप्त होने लगती है। नागर जी ने ऐसे समय में भी अपने स्वार्थ में लीन रहने वाले शोषक और स्वार्थी तत्वों पर कड़ा प्रहार किया है। वे लिखते हैं: "यह लोग लूटे हुए समाज की पीड़ा को नहीं पहचानते।[9] "

वे समाज के नैतिक उत्थान को अत्यधिक महत्व देते थे। यदि समाज या जनता का चरित्र गिर जाए, तो उसे वापस उठाना बहुत कठिन होता है। इसके लिए समाज को बड़े त्याग करने पड़ते हैं। 'मानस का हंस' में तुलसीदास के माध्यम से कहलवाया गया है: "लोक का चरित्र गिरा हुआ है उसे उठाने की कामना रखने वाले को कठिन त्याग करना होगा।[10] " नागर जी का सामाजिक दृष्टिकोण किसी एक बंधी-बंधाई लीक या विचारधारा का गुलाम नहीं था। समय के साथ उनकी वैचारिक समझ और गहरी होती गई।

'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' जैसे उपन्यासों तक उनकी आस्था समाजवादी विचारों के प्रति दिखाई देती है। आगे चलकर 'मानस का हंस', 'बिखरे तिनके', 'करवट' और 'पीढ़ियां' जैसे उपन्यासों तक आते-आते वे लोकतंत्र की व्यवस्था के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रबल पक्षधर बन गए। नागर जी के सामाजिक दर्शन के केंद्र में हमेशा मनुष्य रहा। उनका मानना था कि मनुष्य की पहचान उसके धर्म या संप्रदाय से नहीं, बल्कि उसकी मनुष्यता से होती है। चाहे वह किसी भी धर्म या व्यवस्था में विश्वास रखता हो, वह मूलतः एक मनुष्य है।उनके उपन्यास 'करवट' में बाबा राम जी का एक अत्यंत मार्मिक और

प्रगतिशील कथन है: "आडरे, जब मरिगा तब कहां हिंदू, कहां मुसलमान और कहां किरिस्तान। मनुष्य जब जन्मत है और जब मरत है तब मनुष्ये होत है रामजी।[11] " संक्षेप में, नागर जी का सामाजिक दृष्टिकोण पूरी तरह से मानवतावादी था। उनका स्पष्ट मानना था कि सामाजिक विधान (नियम और कानून) मनुष्य के लिए होते हैं, न कि मनुष्य विधान के लिए। वे उसी समाज को सबसे उत्तम और श्रेष्ठ मानते थे, जिसमें मानवीय मूल्यों की रक्षा हो और उन्हें सबसे ऊपर रखा जाए।

सहायक ग्रंथ सूची :

1. एकदा नैमिशरण्ये – अमृत लाल नागर - पृ -2
2. नाचो बहुत गोपाल- अमृत लाल नागर -पृ- 307
3. बूंद और समुद्र - अमृत लाल नागर-पृ -265
4. अमृत और विष- अमृत लाल नागर-पृ -405
5. मानस का हंस - अमृत लाल नागर-पृ - 282
6. अमृत और विष- अमृत लाल नागर-पृ-386
7. अमृत और विष- अमृत लाल नागर-पृ-377
8. अमृत और विष- अमृत लाल नागर-पृ-385
9. मानस का हंस - अमृत लाल नागर-पृ - 323
10. मानस का हंस - अमृत लाल नागर-पृ - 354
11. करवट - अमृत लाल नागर-पृ-359

****